कवि कालिदासकृतकुमारसम्भव का हिन्दी पद्यों

का

रूपान्तर

अनुवादक

श्रीश्यामनारायण पाण्डेय

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९४८
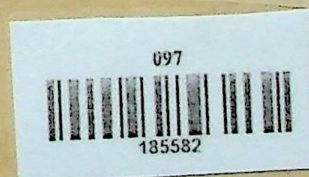
Published by
K. Mittra,
at the Indian Press Ltd.,
Allahabad

Printed by
A. Bose,
at The Indian Press, Ltd,
Benares-Branch.

प्राक्कथन

मार्गशीर्ष कृष्णैकादशी]   [अनुवादक

इस धरती से भी अधिक यशस्वी, भारत और भारतीय संस्कृति के एकमात्र महाकवि कालिदास की किसी कृति के बारे में कुछ कहना केवल विद्वानों के कथनों की पुनरावृत्ति मात्र होगी। उनकी कृतियों को लेकर संसार के कोने-कोने के सभ्य देशों के मर्मज्ञों ने उनकी दिग्व्यापिनी वसतोमुखी प्रतिभा का जो समाकर्षक रूप खींचा है वह हम भारतीयों के लिए साश्चर्य गर्व की वस्तु है। रसात्मकं वाक्यं काव्यम् अथवा तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावित्यादि आचार्यों के काव्यलक्षणों में दोष हो सकते हैं किन्तु कालिदास का काव्य, काव्य है इसमें सन्देह नहीं है। उनके काव्यामृत के स्निग्ध स्रोत में गोते लगाकर कितनों को प्रकाश मिल गया, अमरता मिल गयी और मिल गया वह आनन्द जो योगियों को असम्प्रज्ञात समाधि में मिलता है। उनकी पंक्ति-पंक्ति में संस्कृति की आत्मा का अखण्ड संगीत स्पन्दित होता है, वर्ण-वर्ण में सरसता झाँकती है और गति-यति में मादकता झूमती है, ताल-लय और स्वर के साथ।

रस, गुण, अलंकार, भाव, शक्ति और चमत्कार के रहते भी जिसके बिना कविता सहृदयों के हृदय नहीं छू पाती वह अलौकिक अनाम वस्तु कुछ और ही है जो कालिदास के काव्यों में पदे-पदे थिरकती है, मन्त्रमुग्धा नर्तकी सी, रसमुग्धा मयूरी सी। कहने का तात्पर्य यह

है कि संसार की समस्त भाषाओं के प्रतिनिधि कवियों में सबसे महान् कौन है ? यदि यह प्रश्न उठ जाय और कोई देश अपना पक्षपात न करे तो इसमें सन्देह नहीं है कि विश्व के कोने-कोने से भारत की ओर यही आवाज आयेगी कि 'कालिदास'।

सरसा प्रसन्ना कविता के प्रसाद से कालिदास की कीर्त्ति ससागरा पृथ्वी के उस पार न जाने कहाँ तक चली गयी। भारत का भी तो परिचय विदेशियों को उनके अभिज्ञान शाकुन्तल से ही मिला। अभिज्ञान शाकुन्तल की मनोहारिता मनोमुग्धकारिता तथा रंगमंच की सहज सफलता ने दूरस्थ सिन्धु पार की जनता को कवि कालिदास और उनकी जन्मधरती भारत को खोज निकालने के लिए विवश कर दिया। यह है हमारे कवि का साधारण परिचय। बृहत् परिचय के लिए तथा उनके बारे में नगर-नगर, गाँव-गाँव में फैली किम्वदन्तियों के लिए एक अलग पुस्तक की रचना करनी होगी, मेरे इस प्राक्कथन में वह शक्ति कहाँ जो उनके परिचय भार सहन कर सके।

कालिदास की कृतियों में रघुवंश कुमारसम्भव ऋतुसंहार अभिज्ञान शाकुन्तल और मालवकाग्निमित्रादि काव्य और नाटक मुख्य हैं। यों तो उनकी सभी रचनाएँ एक दूसरे से बढ़कर सिद्ध हो चुकी हैं फिर भी कुमारसम्भव का ही सप्तम सर्ग पर्यन्त हिन्दी पद्यों में रूपान्तर करके मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव श्रीमान् पण्डित गंगाधरजी शास्त्री भारद्वाज की आज्ञा का पालन किया है।

इस कथन में दो मत नहीं हो सकते कि मूल की मधुरता, सरसता और वास्तविकता को रूपान्तर सर्वांश में नहीं प्राप्त कर सकता। मनुष्य और उसकी तसवीर में अन्तर होता है। फिर भी मैंने श्लोकों का सही रूपान्तर

उतने ही बड़े छन्दों में करने का प्रयत्न किया है। रूपान्तर करने में विवशता के साथ बन्धन इतना कड़ा होता है कि गति अवरुद्ध हो जाती है, आगे बढ़ना कठिन ही नहीं असम्भव हो जाता है। ऐसी दशा में अन्य अनुवादक जिस कौशल से काम लेते हैं उससे मैं अलग नहीं हूँ इस-लिए कहीं-कहीं भावानुवाद हो गया है जिसका ज्ञान मुझे तो है लेकिन औरों को कठिनता से ही मालूम हो सकेगा। यदि रूपान्तर के किसी भी शब्द की उपेक्षा न होगी तो उसके पठन से बहुलांश में कुमारसम्भव का ही आनन्द मिलेगा। छन्दों की गति-यति ठीक करने के लिए कोई भी शब्द भरती का नहीं है। शब्द चाहे व्रजभाषा के हों या अन्य के, लेकिन हैं ठीक अनुवाद ही। इसलिये ध्यानस्थ होकर ही पढ़ने से रस मिलेगा अन्यथा नहीं।

रूपान्तर आपके सामने है। मैं अपने इस प्रयत्न में कितना सफल हुआ हूँ इसको उसके अध्येता ही बतला सकते हैं जिन्होंने ध्यान से मनन और चिन्तन किया है लेकिन मुझे पूरा विश्वास है कि रूपान्तर आपको सन्तुष्ट करेगा।

शुभम्

मेरे उपवन की प्रथम गन्ध !
मेरे आँगन की चन्द्र किरन !
मेरे अन्तर की अमृत धार !
मेरे नन्दन की बाल हिरन !

उस दिन सन्ध्या समय खेलने के बाद जब अपनी नन्हीं नन्हीं पगध्वनि से मेरे पुलकित हृदय में संगीत भरती हुईं किलककर मेरे बिस्तर पर सो गईं और बार बार 'पताजी, पताजी' की तुतली बोली के फूलों की वर्षा मुझपर होने लगी, तब यह नहीं जानता था कि मैं अपनी मातृहीन सन्तान 'शर्मदा' के स्नेह का अन्तिम आनन्द ले रहा हूँ, मुझे यह नहीं मालूम था कि कल मेरी नन्हीं बेटी महामारी के भयंकर जबड़ों के बीच होगी, मुझे बिल्कुल पता नहीं था कि महामृत्यु की काली छाया मेरे घर के चतुर्दिक् घूम रही है।

दूसरे दिन का वह भयावना दृश्य, मेरे काँपते हुए हाथों का वह व्याकुल प्रयत्न, उपचारों की वह तीव्रता लेकिन सब निष्फल, सब व्यर्थ। बेटी, आधीरात के अन्धकार में मेरी दृढ़ गोदी से तुम्हें बरजोरी किसी ने छीन लिया। न जाने कौन, क्रूर, निर्दय, नृशंस।

विश्व की सबसे दयनीय सन्तान !

मेरे न रहने पर जिसकी पाण्डुलिपि पर न जाने किस भाषा में अनेक रेखाएँ खींच दी थीं, वही रूपान्तर तुम्हारे नन्हें हाथों में देकर क्या करूँ अब सन्तोष करता हूँ। लो, पढ़ो।

प्रथम सर्ग

उत्तर दिशा में देव-सम
गिरिराज हिमगिरि राजता।
घुस पूर्व-पश्चिम-सिन्धु में
भू - मानदण्ड विराजता॥

गो भूमि, हिमगिरि वत्स,
दोग्धा गिरि सुमेरु बना चतुर।
पृथु-आज्ञया दोहन किये
गिरि-वृन्द ने मणिगण प्रचुर॥

रत्नप्रसू गिरि-रम्यता का
हिम न बाधावान है।
यक दोष गुण-गण में
शशी-कर में कलंक समान है॥

घन-खण्ड रँगता अप्सरा-तन
को विभूषण दे सुघर।
सन्ध्या अकालिक सम
शिखर से धातुमत्ता धारकर

गिरि-मध्य-घन-छाया सुखद में
सिद्ध - साधु - निवास हैं।
बरसात में उन्नत शिखर पर
समुद करते वास हैं॥

हत-दन्ति-हरि-पद - रुधिर - रेखा
धुल गयी हिम से अगर।
पर नख-पतित मोती किरातों
को बताते हैं डगर॥

गज-विन्दु-सम जो धातु-रस से
रक्त-भूर्ज लिखे गये।
गिरि-सुन्दरी-गण के लिये
वे प्रेम-पत्र बने नये॥

गह्वर-वदन से निकल कीचक
छिद्र जब भरता पवन।
गान्धार किन्नर तान का
करता हिमालय अनुकरन ॥

गज गाल की खुजली मिटाता
सरल तरु पर रगड़कर।
संघर्ष से है दूध चूता
सुरभिमय बनता शिखर ॥

आनेह औषध-ज्योति गह्वर-
भवन में जलती सदा।
दम्पति किरातों को सुरति की
दीपिका बनती सदा ॥

पद ठिठुरता हिम-पूर्ण पथ पर
किन्नरी चलती सनति।
बोझा उरोज-नितम्ब का
इससे न तजती मन्द-गति ॥

कौशिक-सदृश तम को गुहा में
शरण देता है अचल।
शरणागतों में साधु को
आत्मीयता होती अटल ॥

गिरि पर घुमाती पूँछ, जिनके
रोम शशिकर सम धवल।
सार्थक बना गिरिराज को
हैं चमरियाँ भ्रमतीं सबल॥

रति-समय प्रिय से खिंच गया
पट सकुच किन्नरियाँ गईं।
तत्क्षण गुहा पर छा गया घन,
खिल अचल-परियाँ गईं॥

गंगाम्बु-कण-वाही, हिलाता
चीड़ तरु, पर मोर के।
लगता पवन तन में हरिण-
खोजी किरात विभोर के॥

सप्तर्षि-कर के तोड़ने से
जो बचे गिरि-सर-कमल।
भ्रमते अधः रवि ऊर्द्ध-किरणों
से सदा खिलते अमल॥

मख-द्रव्य-जनक तथा कु-धारण
में समर्थ विचार कर।
विधि ने दिया मख-भाग अचला-
धीश पद, सत्कार कर॥

कुल-हित सुमेरु-सखा अचल ने
सविधि हाथ मिला लिया।
मुनि-माननीया, मानसी, उद्वाह
'मेना' से किया॥

कुछ दिन गये लेने लगे रस
सविधि सुरत-प्रसंग से।
शुचि गर्भ मेना ने किया
धारण मनोरम ढंग से॥

जिस अहि-सुता-पति जलधि-प्रिय ने
इन्द्र-पवि ठुकरा दिया।
सानन्द मेना ने उसी मैनाक
को पैदा किया॥

भव-पूर्व पत्नी, दक्ष-कन्या
जो जनक-अपमान से
जलकर मरी, जन्मी वही,
मेना-उदर से, मान से॥

मेना अदूषित-नीति थी
उत्साह-गुण गिरिराज था।
सम्पत्ति-सी जन्मी सती
आनन्द का सब साज था॥

रज-रहित मारुत बह चला
प्रति ककुभ निर्मल हो गया।
ध्वनि शंख की, वर्षा सुमन की,
भूमि तल दुख खो गया॥

घन-नाद-भिन्न-रतन-छटा से
गिरि विदूर-मही यथा।
शोभित हुई गिरि-साथ मेना
कान्त-कन्या से तथा॥

बढ़ने लगी शशि की कला-सी
लोग हरषाने लगे,
लावण्य-ज्योतिर्मय सती के
अंग बल पाने लगे॥

पर्वत-सुता थी, नाम इससे
पार्वती उसका हुआ।
माँ ने मना तप से किया
तब अन्य नाम उमा हुआ॥

बहु सुत-सुता, पर अचल केवल
पार्वती को चाहता।
नव विविध-कुसुम वसन्त में
अलि आम्र-कुसुम निहारता॥

नभ-जाह्नवी से स्वर्ग-पथ,
दीपक-सदृश द्युति-ज्वाल से।
विद्वान सम संस्कृत गिरा से
ज्यों उमा से गिरि लसे॥

मंदाकिनी-तट पर बनाकर
गेंद - गुड़िया - वेदिका।
सखि-संग गिरिजा खेलती
क्रीडा बनी थी सेविका॥

शरदर्तु - गंगा - हंस - माला,
निशि - महौषध - दीप्ति - सी।
अभ्यस्त विद्या पूर्व की
गिरिराज-कन्या में वसी॥

भूषण-बिना, भूषण ललित
मद के बिना मद आ गया।
सुम-हीन बन कामास्त्र यौवन
देह में लहरा गया॥

रवि-किरण से ज्यों कंज फबता,
तूलिका से चित्र ज्यों।
आई जवानी बन गया तन
विमल रम्य विचित्र त्यों॥

पद-नख-प्रभा से ज्ञात होता,
लालिमा करती वमन।
स्थल पर अरुण-सरसिज उगाती,
जब उमा करती गमन॥

नूपुर-मधुर-ध्वनि से खिंचे
आये स्वयं आनन्द-गति।
पाई नतांगी पार्वती ने
हंस-गण से मन्द-गति॥

विधि ने जघन की सृष्टि में
लावण्य-धन व्यय कर दिया।
शेषाङ्ग-रचना के लिये कर
यत्न छवि-सर्जन किया॥

कदली हुई अति शीत, कुंजर-
शुण्ड कर्कशतर हुए।
गिरिराज - कन्या - जघन के
उपमान से बाहर हुए॥

निज गोद में हर ने बिठाया
जिन नितम्बों को तरस।
अनुमान करना चाहिये
कितने रहे होंगे सरस॥

नत-नाभि-रन्ध्र घुसी कृशित
नव लोम-माला सुखकरी।
मृदु मेखला की असित मणि
की ज्योति-सी थी छवि-भरी।

पतली कमरवाली उमा
तारुण्य के स में सनी।
आरोहणार्थ मनोज को
सोपान तनु-त्रिवली बनी॥

पीले कठिन स्तनद्वय परस्पर
रगड़खाते चढ़ चले।
कुच-बीच विस के सूत्र का
रखना कठिन था, बढ़ चले॥

भुज अधिक कुसुम शिरीष-से
सुकुमार थे, यह सिद्ध है।
कामारि के गल के बने वे
पाश, जगत-प्रसिद्ध है

उन्नत कुचों पर ललित मौक्तिक-
हार, युग छविवान थे।
हिल-मिल बढ़ाते कान्ति, भूषण-
भूष्य-भाव - समान थे॥

श्री, कमल में, शशि में नहीं
शशि में रही, न सरोज में।
पर मुग्ध रहती बस उमा के
वदन - चन्द्र - सरोज में॥

सित पुष्प पल्लव पर रहे,
मोती प्रसन्न प्रवाल पर।
तो कुछ नकल मुसकान की
होगी रदनछद लाल पर॥

मृदुभाषिणी गिरिजा
अमृतस्रावी वचन कहने लगी।
तो कोकिला की ध्वनि वितन्त्री
सम श्रवण दहने लगी॥

हिलते असित-अम्भोज-सम
चल चकित दृग से देखना।
पाया मृगी से या मृगी ने
गिरि-सुता से, पेखना॥

अंजन - शलाका-कृत वितत
भ्रू की सुछवि अवलोक कर।
छोड़ा मदन ने मद धनुष की
कान्ति का, बहु शोक कर॥

पशु-पक्षियों के चित्त में
लज्जा तनिक होती अगर
तो सब चमरियाँ त्यागतीं
कच-प्रेम देख चिकुर-सुघर ॥

संसार भर की एक ही थल
छवि निरखने के लिये ।
विधि ने उमा की सृष्टि की
उपमा न रखने के लिये ॥

आये अचानक कामचर
नारद, उमा को देखकर
बोले, उमा यह शम्भु की
अर्द्धाङ्गिनी होगी अमर ॥

इससे न यत्न किया अचल ने
दूसरे वर के लिये ।
पावक बिना, मन्त्रित-हविस
को अन्य तेज न चाहिये ॥

माँगे बिना हर को हिमालय
दे सका कन्या नहीं ।
अभ्यर्थना के भंग-भय से
बुध न कुछ कहते कहीं ॥

पहले शिवा जलकर मरा
सम्बन्ध शिव से तोड़कर।
पत्नी-रहित तन से हुए हर
वासना सब छोड़कर॥

बैठे यती मृगचर्म लेकर
भजन-हित गिरि पर वहाँ।
थल जाह्नवी-सिंचित-सरल-
मृग-मद-सुरभि-लय-मय जहाँ॥

अपने खुरों की नोक से
हिम की शिला को तोड़ता।
सहकर न हरि-रव गरजता
नन्दी गवय-मुख मोड़ता॥

शिर में नमेरु-कुसुम पहन, गण
भोज-बल्कल धारकर।
बैठे शिलाजतु-औषधों
से व्याप्त शुचि चट्टान पर॥

ले अन्य-पावक-मूर्त्ति अपनी।
अष्टमूर्त्ति हुए विकल।
तप-फलद शम्भु हुए स्वयं किस
पुण्य-हित तप में अटल॥

गिरिराज ने सादर प्रथम
सुर-पूज्य शिव-पूजन किया।
विजया-जया के साथ फिर
सेवार्थ गिरिजा को दिया॥

तप के लिये थीं विघ्न, तो भी
पार्वती को रख लिया।
वे धीर हैं, कारण रहे पर
चल न हो जिनकी क्रिया॥

शुचि वेदिका पर जल कुसुम
कुश नित उमा रखती रहीं।
शिर-चन्द्र-किरणों से सदा वह
दूर श्रम करती रहीं॥

—:०:—

द्वितीय सर्ग

उस समय तारक ने भगाया
निर्जरों को शक्ति से।
कर इन्द्र को आगे, गये वे
विधि-निकट अति भक्ति से॥

हत-श्री सुरों के सामने
शोभित पितामह यों हुए।
मुकुलित - कमल - सर - सामने
शोभित सुबह रवि ज्यों हुए॥

कर प्रणति, धाता सर्वतोमुख
सर्व-प्रिय वागीश की।
करने लगे सुर विनय संस्कृत
भारती से ईश की॥

पहले सृजन के एक, पीछे
तीन मूर्ति प्रणाम है।
तू विष्णु है, तू शम्भु है,
तू विधि अनन्त प्रणाम है॥

जल में अजन्मा, तव करों से
वीज विखराया गया।
इससे चराचर-सृजन-कर्त्ता
तू सदा गाया गया॥

पहले व्यवस्था से महाबल
की बढ़ाकर सम्पदा।
तू सृष्टि करता पालता
संहार करता सर्वदा॥

स्त्री-पुरुष तन के भाग दो,
फल सकल तेरी दृष्टि के।
वे ही बने माता-पिता
उत्पत्तिवाली सृष्टि के॥

तेरी निशा जो दिवस सोने
जागने के हैं बने।
वे प्राणियों के प्रलय हैं
उत्पत्ति क्रम से हैं बने॥

तू विश्व-योनि अयोनि है
तू विश्व-अन्त, अनन्त है।
तू विश्व-आदि, अनादि है
तू विश्व-कन्त, अकन्त है॥

तू जानता निज को तथा
निज सृष्टि है करता स्वयम्।
तू शक्त है अतएव अपने
आप को हरता स्वयम्।

द्रव, कठिन, सूक्ष्मासूक्ष्म
व्यक्ताव्यक्त लघु-गुरु-युक्त है।
अणिमादि-मय है कार्य-कारण
और उनसे मुक्त है॥

आरम्भ होता तीन स्वर से
तू वही ओंकार है।
फल-कर्म जिनका स्वर्ग-मख है
तू वही अविकार है

पुरुषार्थ के हित प्रकृति तुझको
सांख्यवाले कह रहे।
फिर प्रकृतिद्रष्टा पुरुष भी
तुझको निराले कह रहे॥

तू पितृगण का भी पिता है
देव-देव हरे, हरे,
यज्ञादि का भी सृष्टि कर्त्ता
और पर से भी परे॥

तू हव्य, होता, भोज्य, भोक्ता
तू सनातन है प्रभो।
तू वेद्य, ज्ञाता, ध्येय, ध्याता
तू पुरातन है प्रभो॥

यों प्रार्थना सुनकर सुरों की
विधि कृपा करने लगे।
अति मुग्ध होकर देव-गण से
इस तरह कहने लगे॥

सफला हुईं चारों तरह की
निकल शब्द-प्रवृत्तियाँ।
पावन चतुर्मुख के
चतुर्मुख से कलामय वृत्तियाँ॥

हे दीर्घबाहु, अमित बली,
सुरवृन्द, प्यारे स्वागतम्।
सामर्थ्य से अपने अमित
अधिकार-धारे स्वागतम्॥

हिम-मन्द-कान्ति नक्षत्र-सम
क्यों मुख तुम्हारे हो गये।
क्यों छवि नहीं है पूर्वसी
सब तेज क्यों तुम खो गये॥

है तेज बुझने से कुलिश की
सकल-शोभा खो गई।
मालूम होता इन्द्र की
पवि-धार कुण्ठित हो गई॥

है हो गया अरि-प्राण घातक
वरुण-आयुध इस तरह।
हत-वीर्य होता मन्त्र से
विकराल पन्नग जिस तरह॥

जिसकी लताएँ भग्न ऐसा
तरु-समान कुबेर-कर।
होकर गदा से रहित कहता
दुख, पराभव कठिनतर॥

निस्तेज अपने दण्ड से हैं
खोदते यम भी मही।
उल्मुक जला फिर बुझ गया हो
ज्ञात होता है यही ॥

क्षय तेज होने से दिवाकर
चित्र-लिखित समान हैं
अवलोकने पर नयन को
करते न ज्योतिदान हैं ॥

गिरते सलिल अवरोध से
होती सलिल की जो दशा।
गति-भंग होने से वही होती
पवन की दुर्दशा ॥

अवनत पराजय से जटा में
आज चन्द्र-कला नता।
बतला रहे हैं रुद्र सब
हुंकार-बल की हीनता ॥

थे आप सब आदृत प्रथम
अब मान अरि से खो चुके।
अपवाद से उत्सर्ग-शास्त्रों के
सदृश क्या हो चुके ॥

एकत्र हो हे वत्स, क्यों तुम
प्रार्थना करते कहो।
मैं सृष्टि करता और रक्षा
तो तुम्हीं से है अहो॥

मृदु-पवन - कम्पित-कमल-आकर
समहिला दशशत नयन।
कुछ बोलने को इन्द्र ने गुरु
को किया इंगित सघन॥

सहस्राक्ष से भी अधिक दर्शन-
शक्ति रखते नेत्रद्वय
जिनके, वही गुरु वचन बोले
ब्रह्म से प्राञ्जलि अभय॥

भगवन, न उससे अधिक कुछ है
आप जो हैं जानते।
प्रभु, आप अन्तर्निष्ठ हैं
सर्वज्ञ हैं, सब मानते॥

वरदान लेकर आप से तारक
असुर-नेता महा।
दुख धूम्र-केतु-समान ही
संसार को है दे रहा॥

भास्वान उतनो ही नगर में
धूप विखराते प्रभो।
जिससे कमल उसके सरों के
विकच हो जाते प्रभो॥

शशधर सितेतर पक्ष में भी
सब कला से सेवते।
भय से न शिव-शिर-चन्द्र
लेखा ग्रहण करते भव-पते॥

सुम-चौर्य-भय से वाटिका में
मन्द-गति रहता पवन।
पंखे सदृश उसके निकट
मन्थर गमन करता पवन॥

ऋतु कुसुम संचय में लगे
क्रम-सेवना से डर रहे।
माली-सदृश तारक असुर की
सभय सेवा कर रहे॥

उसको रतन उपहार देने के
लिये सागर विकल।
परिपाक तक ही यत्न से
करता प्रतीक्षा सलिल-तल॥

मणि-दीप्त वासुकि आदि पन्नग
असुर - सेवा कर रहे।
निशि में अबुझ दीपक-सदृश
मणिदीप्ति से तम हर रहे॥

उसके अनुग्रह की अपेक्षा
इन्द्र भी करते सदा।
चर से विभूषण कल्प तरु के
भेजते रहते सदा॥

तो भी दबाये जगत को
रहता अमित दुख-भार से।
अपकार से खल शान्त होते
हैं, नहीं उपकार से॥

देवाङ्गना - कर से सदय
तोड़े गये जिनके सुदल।
उन दिव्य नन्दन के द्रुमों
को काटता तारक प्रबल॥

सोये असुर को श्वास-सम
मृदु वायु से चामर झलें।
वन्दी सुर-स्त्री-विकल-नयनों
से गरम आँसू ढलें॥

रवि-हय-खुरों से ध्वस्त स्वर्णिम
मेरु - शृङ्ग उखाड़ कर ॥
लाया भवन के बीच क्रीडा-
गिरि बनाया गाड़कर ॥

दिग्-दन्ति-मद-कलुषित बचा
अब जाह्नवी का शेष जल।
उसके सुवर्ण सरोज से शोभित
असुर - वापी विमल ॥

तारक असुर के त्रास से
नभ-यान चलते हैं नहीं।
इससे कभी अब लोक-दर्शन
देव करते हैं नहीं ॥

उस असुर के कारण प्रभो,
सुनिये मखों की दीनता।
यजमान-कर से दत्त हवि को
अग्नि - मुख से छीनता ॥

चिरकाल अर्जित इन्द्र-यश-सम
और जो गति में हवा।
छीना असुर द्वारा गया है
अश्व वह उच्चैः श्रवा ॥

यों तारकासुर में हमारे
सब उपाय हुए विफल।
ज्यों सन्निपात-विकार में
असफल सकल औषध प्रबल॥

हरि-चक्र ने मारा उसे
प्रतिघात से ज्वाला उठी।
उल्टे वही ज्वाला गले में
बन कनक-माला उठी॥

ऐरावतादि परास्त जिनसे
वे असुर-कुञ्जर रहे।
वे पुष्करावर्त्तक घनों में
वप्रक्रीडा कर रहे॥

खल-नाश के हित वीर-सेनप
चाहते हम इस तरह।
भव-कर्म-नाशक धर्म को हैं
मोक्ष-इच्छुक जिस तरह॥

सुर-सैन्य-रक्षक वज्रधर
आगे जिसे कर मोद से
वन्दीव जयश्री छीन लेंगे
असुर-तारक-गोद से॥

गुरु के वचन सुन विधि-गिरा
निकली सरस पावन भली।
घन की गरज के बाद उसने
वृष्टि शोभा जीत ली॥

इच्छा तुम्हारी पूर्ण होगी,
पर रुको कुछ दिन अभी।
उसके हनन-हित स्वयं
रचना मैं न कर सकता कभी॥

मैं ने दिया वरदान फिर
मारूँ कदापि उचित नहीं।
विष-तरु लगाकर भी उसे
है काटना समुचित नहीं॥

उसकी प्रथम थी प्रार्थना
मैं सुर अवध्य रहूँ सदा।
स्वीकार कर तप-ताप से
जग को बचाया था तदा॥

वह युद्ध-तत्पर तारकासुर
समर-कुशल अपार है।
उसको, बिना शिव अंश के
कोई न सकता मार है॥

वे शिव तमोगुण से परे
उत्कृष्ट-ज्योति-स्वरूप हैं।
मुझ से तथा हरि से अगम हैं
विविध उनके रूप हैं॥

यह यत्न हो कि, खिंचे उमा पर
अचल शिव-मन इस तरह।
हे देव, चुम्बक से सदा है
लोह खिंचता जिस तरह॥

मेरे तथा शिव-बीज को है
कौन जो धारण करे।
मम बीज जलमय मूर्ति ही,
शिव बीज गिरिजा ही धरे॥

सेनप तुम्हारा बन हरेगा
सकल दुख शिव-पुत्र ही।
बन्दी स्त्रियों के रूक्ष
केशों को सजायेगा वही॥

इस तरह कह कर तुरत
अन्तर्धान ब्रह्मा हो गये।
कर्तव्य निश्चय कर सकल
सुर भी अमर पुर को गये॥

क्षण सोच, फिर शुभ कार्य
में स्मर को सहायक जानकर।
सौत्सुक्य ध्यान किया मदन का
पाकशासन ने प्रवर॥

रति-वलय-चिह्नित कण्ठ में
स्त्री-भृकुटि-सदृश धनुष लिये।
वासव-निकट आया मदन, मधु
को रसाल कुसुम दिये॥

—:०:—

तृतीय सर्ग

५

सब ओर से वासव-नयन हट
मदन के तन पर पड़े।
प्रायः चपल प्रभु-विभव होते
स्वार्थ-पूरक में बड़े॥

'बैठो यहाँ' कह पास ही
आसन दिया सुरनाथ ने।
शिर से कृपा स्वीकार करके
यों कहा रतिनाथ ने॥

तत्त्वज्ञ, आज्ञा दें जगत में
आपकी क्या चाह है।
आदेश पालन कर अनुग्रह
जीत लूँ, उत्साह है॥

भवदीय-पद की कामना से
कौन तप करता महा।
उसको करूँ वश में निहित-शर
चाप से सब तप बहा॥

आवागमन से मुक्त होना
चाहता वह कौन नर।
उसको अभी प्रमदा-कटाक्ष
से बना दूँ चपलतर॥

उशना-पठित भवदीय-अरि
के धर्म-कर्म विनष्ट यों
कर दूँ विषय से, सरित के
दो बाढ़-पीड़ित कूल ज्यों॥

सुन्दर सती है कौन जिसको
चाहते बतलाइये।
निर्लज्ज चपल उसे बना दूँ
विवश आप लगे हिये॥

किस क्रुद्ध तरुणी से तिरस्कृत
हो गये कामुक-प्रवर,
तन काम-ज्वर-पीडित बनाकर
दूँ सुला मृदु-सेज पर ॥

हों बहु प्रसन्न, न दुख करें
अब आपका पवि सुख करे।
मेरे शरों से विद्ध अरि,
कुपितावला से भी डरे ॥

मधु-साथ ले कुसुमास्त्र से ही
आपकी यदि हो दया।
तो मैं पिनाकी को हरा दूँ,
हैं धनुर्धर और क्या ॥

रख समुद आसन पर जघन से
इन्द्र-चरण उतार के।
लख कार्य-योग्य मनोज को
बोले वचन सत्कार के ॥

सच कह रहे पवि और तुम, दो
अस्त्र मेरे हैं सफल।
पर पवि विफल तापस-जनों में,
हर जगह तुम हो सफल ॥

रखता तुम्हे गुरु कार्य में
बल जानता हूँ इसलिये।
हरि ने कहा था शेष ही को
भूमि-धारण के लिये॥

शर-गति तुम्हारी शम्भु में,
यह कार्य मम स्वीकार है।
तुम जान लो इप्सित यही
यह ही अमर-सुख-सार है॥

विजयार्थ सुर शिव-पुत्र को
सेनप बनाना चाहते।
तव बाण से ब्रह्मस्थ शंकर
को रिझाना चाहते॥

शिव को उमा में प्रेम हो
ऐसा उपाय करो सखे!
शिव-वीर्य-धरण मही उमा है
और अन्य न भी सखे!

गिरिजा बनी परिचारिका है
रुद्र तप करते जहाँ।
यह हाल परियों से मिला है,
"गुप्तचर परियाँ यहाँ"॥

बनता प्रथम है बीज-अंकुर
के लिये जल हेतु ज्यों।
सुर-कार्य के सिद्धर्थ बन जाओ
सखे, तुम हेतु त्यों॥

शिव में तुम्हारी अस्त्र-गति है
धन्य तुम हो इसलिये।
जो कार्य लोकोत्तर, वही होता
मनुज-यश के लिये॥

प्रार्थी अमर-त्रयलोक का
यह कार्य तुमसे सिद्ध है।
यह कार्य हिंसा-हीन भी
तव श्लाध्य शक्ति प्रसिद्ध है॥

हे कामदेव, बिना कहे ही मधु
सहाय बना स्वयम्।
ज्यों ज्वलित पावक का सहायक
पवन होता है स्वयम्॥

कह एवमस्तु सुहार-सम
आदेश ले शिर पर चला।
गज-परस-दृढ़ कर से दिया
सहला अमर ने तन भला॥

ले संग मधु-रति को मदन
पहुँचा अचल पर शिव-निकट।
बोला जिऊँ या मैं मरूँ
सुर-कार्य होगा ही विकट॥

हर-गहन में मुनि-तप-विरोधी
मधु अचानक आ गया।
स्मर-गर्व-रूप स्वरूप धरकर
तरु-दलों पर छा गया॥

मधु छा गया रवि उत्तरायण
हो गये तज समय-क्रम।
दक्षिण दिशा के वदन से
निकला पवन उच्छ्वास सम॥

तत्क्षण अशोक प्रसन्नता से
सरस कुसुमित बन गया।
स्त्री-चरण-ताडन की अपेक्षा
भी न की बन-ठन गया॥

सहकार-कुसुम - विशिख - सृजन
के बाद उस पर रम्यतर।
मधु ने लिखे स्मर-नाम-अक्षर
मधुकरों के मिस प्रवर॥

थे कर्णिकार कुसुम सुघर, पर
गन्ध-रहित, न थे सुखद।
प्रायः-गुणों की पूर्णता में
विधि-प्रवृत्ति रही दुखद॥

नवलाल कुसुम पलास के
वन राजते शशिबाल ही।
नख-क्षत किया वन-भूमि का
ऋतुराज ने तत्काल ही॥

ऋतुराज-श्री ने भ्रमर का
कज्जल, तिलक का तिलककर।
शोभित किया तन, बाल-रवि
के राग, पल्लव के अधर॥

तरुवर प्रियाल-पराग से अन्धे
मदोद्धत मृग सकल।
वन - भूमि में सम्मुख हवा के
गमन करते थे चपल॥

खा आम्र-अंकुर-रक्त-गल से
मधुर-रव पिक ने किया।
स्मर-वचन बनकर मानिनी का
मान उसने दल दिया॥

हिम बीतने से मृदु-अधर पाण्डुर
वदनवाली अभय।
किन्नर-प्रिया की पत्र-रचना-
मध्य स्वेद हुआ उदय।।

शिव के तपोवन के तपस्वी
लख अकालिक मधु विमल।
मन जीतने में कठिनता से
वे समर्थ हुए विकल।।

रति-संग आया काम जब
नव पुष्प शर धनु पर चढ़ा।
तब स्त्री-पुरुष-गण में परस्पर
भाव अति रति का बढ़ा।

अलि ने प्रिया के साथ मधु-रस
एक वर्तन में पिया।
मृग कृष्ण ने विह्वल मृगी-तन
सींग से खुजला दिया।।

गण्डूष-सलिल करेणु ने
गज को कमल-सुरभित दिया।
अर्धोपभुक्त मृणाल चकवा
ने स्वजाया हित दिया।।

श्रम-जल-मलिन पत्रावली थी
गा रही किन्नर-प्रिया।
मधु-मस्त किन्नर ने वदन का
बीच ही चुम्बन किया॥

सुमनस्तवक कुच, अधर पल्लव
सुन्दरी लतिका प्रिया।
शाखा-विनत भुजबन्ध से
आश्लेष तरुवर ने किया॥

सुन अप्सरा-गण-गीत भी
शिव योग में तत्पर हुए।
क्या योगि-मन को जीतने में
विघ्न बलवत्तर हुए?

ले वाम कर में दण्ड नन्दी
आ लतागृह-द्वार पर।
गण वृन्द से बोले, करो
मन को न इतना चपलतर॥

तरु भ्रमर निश्चल, मौन अण्डज
गति-रहित मृग हो गये।
बन चित्र-लिखित सदृश हुआ
मति-धीरता सब खो गये॥

रतिनाथ सम्मुख शुक्र-सम
आँखे बचा नन्दीश की।
आया नमेरु-विरी तपो-भू में
अनामय ईश की॥

व्याघ्राजिनावृत तरु सरल की
पूतवेदी पर अचल।
म्रियमाण ने आसीन देखा
संयमी शिव को अटल॥

पर्य्यङ्क-बन्ध-मनोज्ञ तन
ऋजुनमित-अंस महान थे।
विकसित सरोज-सदृश युगल कर
अंक में छविमान थे॥

बाँधे जटा अहि से, श्रवण
रुद्राक्ष से घेरे अमल।
गल-नील-छवि से अधिक
नीले कृष्ण त्वग्धारे अमल॥

कुछ दीप्त-उग्र-कनीनिकामय
पक्ष्म-पात-रहित अपल।
नासाग्र लखते, तल प्रकाशक
अयुग-नेत्रों से अचल॥

अतरंग सलिलाशयं सदृश
वर्षा-रहित घन-सम नये।
निष्कम्प दीप-समान प्राण-
निरोध से हर हो गये॥

खर ज्योति शिर के नेत्र-पथ से
निकलती थी रात-दिन।
विसतन्तु से भी अधिक मृदु
वालेन्दु श्री होती मलिन॥

नव द्वार रोक समाधि-निश्चल
मन हृदय में रख अहो।
क्षेत्रज्ञ-ज्ञात स्व-रूप को
लखते स्वयं में मग्न हो॥

ऐसे वशी शिव को निकट से
देख स्मर भय से घिरा
भयभीत को न पता चला
धनु-बाण कब कर से गिरा॥

बल-हीन स्मर का बल बढ़ाती
काय-कान्ति - प्रकर्ष से।
देखा उमा को साथ सखियों
के मदन ने हर्ष से॥

लोहित अशोक सुमनमयी
नव कर्णिकार कुसुममयी।
मधु-जन्य-पुष्प विभूषिता
सित सिन्धुवार कुसुममयी॥

स्तन-भर-नता सुम-भर-नता
बालार्क सम पट-धारिणी।
थी पार्वती, किसलयवती
ललिता लता सञ्चारिणी॥

स्थानज्ञ स्मर से न्यस्त धनुकी
दूसरी ज्या की तरह।
गिरती पुनः रखती जगह पर
वकुल-काञ्ची कलित गह॥

निःश्वास-सुरभि-तृषित भ्रमर
फिरते अधर के ही निकट।
चंचल-दृगी लीला कमल से
दूर करती सभय हट॥

रति भी लजाये इस तरह के
ललित अवयव देखकर।
आशा हुई स्मर को जितेन्द्रिय
में विजय की फिर प्रवर॥

भावी, उमा, पति शम्भु की
प्रतिहार - भू पर आ गई।
शिव-ध्यान की विश्राम वेला
भी कुटी में छा गई॥

धारण किया सप्रयत्न था वह
भूमि-भाग फणीश ने।
पर्य्यङ्क–बन्ध–शिथिल किया
धृत वायु तज जगदीश ने॥

पहले प्रणाम किया 'उमा आई'
कहा नन्दीश ने
भ्रू के इशारे से बुलाया
पार्वती को ईश ने॥

निज हाथ से तोड़े हुए मधु के
सुमन पल्लव सुघर।
कर नमन सखियों ने रखे
शिव के कमल-मृदु-चरण पर॥

कच-न्यस्त-कुसुमों को गिराती
पार्वती ने भी विनत।
शिव को प्रणाम किया श्रवण-
पल्लव गिराती - भावरत॥

'पति हो उदार अनन्य भोगी प्राप्त'
सच शिव ने कहा।
होती कभी न असत्य वाणी
साधु-पुरुषों की महा॥

वाणात्सर लख काम पावक में
पतङ्ग - सदृश हुआ।
सम्मुख उमा के लक्ष्य शंकर
को बना धनु गुण छुआ॥

शिव को उमा ने अरुणतर कर
से पिन्हायी रम्यतर।
रवि - किरण - शोषित गांग-
पंकज-बीज की माला प्रवर॥

सुख से उमा की बीज-माला
ली इधर गिरिनाथ ने।
शर सफल सम्मोहन रखा
धनु पर उधर रतिनाथ ने॥

शशि के उदय से सिन्धु-सम
हर-धैर्य कुछ उर से भगे।
विम्बाधरोष्ठ उमा-वदन पर
फेरने लोचन लगे॥

नव-कंटकित-तन से उमा भी
हाव दिखलाने लगी।
संकुचित हो, मुँह फेरकर
डर - भाव जतलाने लगी॥

बल से वशी ने रोक कर
इन्द्रिय विकारों को प्रवल।
तद्धेतु लखने के लिये, फेरे
नयन दिशि-दिशि विकल॥

पद वाम मोड़, नतांस,
आँखें मूँठ पर, ताने धनुष।
शर-क्षेप-हित उद्यत मदन को
शम्भु ने देखा सरुष॥

झट तीसरा दृग खुल गया
अत्यन्त हर के क्रोध से।
उससे भभकती वह्नि की
ज्वाला चली अनिरोध से॥

प्रभु, क्रोध शमन करें, करें,
जबतक अमर बोले वचन।
तब तक नयन की आग से
भस्मावशेष हुआ मदन॥

पति की दशा यह देखकर
मूच्छित हुई स्मर की प्रिया।
कुछ देर तक उपकार रति का
क्षणिक-मूर्च्छा ने किया॥

तरु पर अशनि के सदृश, तप
के विघ्न स्मर को भस्म कर।
तज युवति-सन्निधि छिप गये
ले भूत-गण को साथ हर॥

शून्या उमा भी सदुख सखि-
सम्मुख त्रया से भर गई।
सौन्दर्य-पितृच्छा विफल लख
निज पिता के घर गई॥

शिव-कोप-भीता मुकुल-नयनी
पार्वती को प्यार से
नलिनी लिये सुर-गज-सदृश
गिरि ले गया सत्कार से॥

—:०:—

Central Library
185582
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar
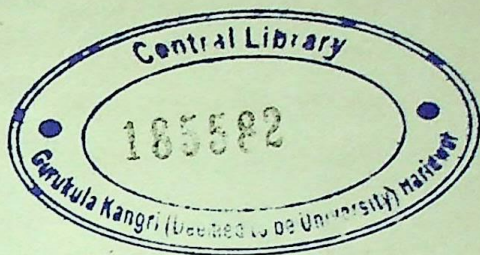
चतुर्थ सर्ग

मोहैक शरणा, विवश रति
अति मोह-निद्रा से जगी।
वह क्रूर-नियति - प्रबोधिका
वैधव्य के दुख में पगी॥

मूर्च्छान्त में प्रिय प्राणपति के
दर्शनार्थ खुले नयन।
पर तनिक जान सकी न वह,
अति लुप्त दर्शन था मदन॥

'अयि प्राणनाथ, सप्राण हो'
उठती हुई रति ने कहा।
नाऽकार हर - कोपाग्नि का
भू पर भस्म देखा महा॥

धूसर कुचा विक्षिप्त-केशा,
विह्वला होने लगी।
निज-सम दुखी भू को बनाती,
इस तरह रोने लगी॥

तेरा मनोहर तन, विलासी
मनुज का उपमान था।
फटता न उर यह हाल लख,
'स्त्री निठुर होती सर्वथा'॥

पुल तोड़ क्यों जाता चला जल
पद्मिनी को छोड़कर।
प्राणेश, त्यों तज भग चले
सौहार्द - नाता तोड़कर॥

मैंने अप्रिय न कियां तथा
तुमने अप्रिय न किया कहीं।
क्या हेतु जो मुझ विलपती को
दे रहे दर्शन नहीं॥

गोत्र-स्खलन से मेखला-
गुण में बँधे क्या याद है ?
या कर्ण भूषण-कमल ताडन,
का अपार विषाद है ?

'तुम हृदय में बसती प्रिये'
यह बात मिथ्या ही कही।
तुम बन अनंग गये अहो
मैं क्योंकि ज्यों की त्यों रही ॥

हे नव प्रवासी, स्वर्ग के,
करती तुम्हारा अनुगमन।
विधि से ठगी पर मैं गयी
त्वदधीन जन-सुख प्राणधन ॥

निशि में तमावृत विकट पथ से
पा तुम्हारी ही मदद।
घन - नाद - भीता कामिनी
कामुक-निकट जाती समद ॥

घुर्णित अरुण दृग प्रतिपदे
क्रम-हीन अटपट बोलना।
तेरे बिना स्त्री-मद्य-मद है
व्यर्थ और विडम्बना ॥

हे तन-रहित, तेरे बिना है
चन्द्र-उदय सफल नहीं।
बहुलान्त में भी कष्ट से तन,
पुष्ट कर पाता कहीं ॥

हरिदरुण - बन्धन - मय
पुरुषपिक शब्द से सूचित अहो।
अब नव रसाल-कुसुम बनेगा,
बाण किस जन का कहो ॥

तेरी धनुर्ज्या-कार्य में
बहुबार अलिश्रेणी लगी।
वह साथ मेरे रो रही
गुंजार किस दुख में पगी ॥

पुनरपि मनोहर देह धारण
कर उठें, आदेश दें।
रति दूति-पद में कोकिला को
आज कुछ सन्देश दें ॥

शिर से प्रणाम सकम्प फिर
आश्लेष का वह माँगना।
स्मृति से न मिलती शान्ति
वह एकान्त-मैथुन-रस सना ॥

रति-कुशल, तव कर से रचित
मधु के कुसुम भूषण सुघर।
मम देह पर शोभित अभी,
पर प्राणनाथ, गये किधर॥

निष्ठुर सुरों के स्मरण करने
पर गये तज बीच ही
मम वामपद शोभित महावर
से करो, आ तुम वही॥

पटु अप्सराओं से अभी वश
में न जाओगे किये
तब तक अनल के मार्ग से
आ लिपट जाऊँगी हिये॥

हे रमण यद्यपि शीघ्र तेरा
अनुगमन करती सही॥
पर स्मर-रहित क्षण जी गई
रति, यह अमर निन्दा रही॥

परलोक में हो, अन्त्य-मण्डन
कर सकूँ कैसे कहो।
तुमको अतर्कित गति मिली
जीवित-रहित तन से अहो॥

अंकस्थ धनुशर को सरल कर
समुद मधु से बोलना।
आता स्मरण हँसना तथा
तिरछे मुझे अवलोकना॥

तव कुसुम - धनु के रचयिता
प्यारे सखा मधु हैं कहाँ?
या तीव्र हर-क्रोधाग्नि से
वे भी गये, तुम हो जहाँ॥

मधु के हृदय में जब लगे
रति रुदन विषमय शर घने।
निज रूप तब मधु ने दिखाया
विकल रति के सामने॥

स्तन-जघन-छाती पीट रोयी
देख रति मधु को खड़ा।
दुख स्वजन के आगे निकलता
विवृत-द्वार-सदृश बड़ा॥

रति ने कहा मधु, तव सखा का
हाल यह क्या है कहो।
शव-भस्म पारावत-शवल-सम
पवन से उड़ता अहो॥

हे मदन, दर्शन दो अभी
उत्सुक बना माधव सजल।
नर-प्रेम स्त्री में चपल होता
पर सखा-जन में अचल॥

तव मित्र अनिलाहत दिआ-सम
बुझ गये नित के लिये।
हे मधु, रही मैं धूममय वाती-
सदृश ले दुख हिये॥

जिसके विशिख कोमल कुसुम
विस तन्तु जिसकी मृदुल-ज्या।
उस धनुष से मधु की मदद से
लोक को वश में किया॥

विधि ने मुझे तज, मार स्मर को
हनन आधे का किया।
गज-भग्न तरु की वल्लरी
कब तक रहे थामे हिया॥

अब बन्धु कार्य करें, हरें दुख
पास मेरे आइये।
बुझ विरहिणी को अग्नि पथ से
पति-निकट पहुँचाइये॥

शशि-साथ जाती कौमुदी
बिजली जलद के साथ हो।
पति-साथ स्त्री करती गमन
यह जानते जड़ भी अहो॥

प्रिय-भस्म से रंजित-कुचा मैं
अति बढ़े अनुराग से
जलकर मरूँगी, नवल किसलय-
तल्प के सम आग से॥

बहु बार तुम सुम-तल्प-रचना
में सहाय हुए सुजन।
अब इस समय जल्दी चिता
रच दो तुम्हें शत-शत नमन

दक्षिण पवन के व्यजन झलकर
आग मेरी दो जला।
मेरे बिना कैसे रहेगा,
तव सखा मनसिज भला॥

फिर दो जलाञ्जलि एक ही
हम दारस्वामी के लिये।
परलोक में जिससे विमल जल
साथ ही दोनों पियें॥

सहकार-पल्लव - सहित माधव,
श्राद्ध करना शीघ्र ही।
तव मित्र को है आम्र की
ही मञ्जरी प्यारी रही॥

तन-मुक्ति-हित निश्चित दुखी
रति को गगन-वाणी हुई।
ह्रद-शोष-विह्वल मीन-हित वह
प्रथम वर्षा सी हुई॥

रति, तव न पति दुष्प्राप्य है
इसको न तुम मन में गुनो।
हर-नेत्र-ज्वाला में शलभ-
सम क्यों मिटा इसको सुनो॥

विधि-मन सुतापर चल हुआ,
फिर रोक काम-विकार को।
विधि ने दिया था शाप इससे
यह मिला फल मार को॥

सानन्द गिरिजा से गिरिश
उद्वाह कर लेंगे जभी।
निज देह से रचना करेंगे
काम की, सुख से तभी॥

शिव-शाप की विधि ने बताई
अवधि यों तत्काल ही।
नीरद-जितेन्द्रिय में अमृत-पवि
युगल होते हैं सही॥

रक्षा करो निज देह की प्रिय
के लिये तुम सर्वदा।
सूखी नदी ग्रीष्मान्त में
फिर ऊर्म्मि-मय होती सदा॥

इस तरह रति को गगन-
वाणी ने बचाया तोष दे।
ऋतुनाथ ने समझा दिया,
उसको अमित सन्तोष दे॥

लखने लगी विपदवधि को
दुखिता स्मरस्त्री इस तरह
दिन की मलिन शशि-किरण
करती निशि-प्रतीक्षा जिस तरह॥

—:०:—

पंचम सर्ग

शिव के मदन-वध-कृत्य से
गिरिजा हताश हुई विफल।
उसको घृणा छवि से हुई,
'है क्योंकि छवि पति में सफल ॥'

उद्यत हुई तप से स्वछवि को
सफल करने को अहो।
शिव-सदृश पति, सत्प्रेम दोनों
मिल सके कैसे कहो॥

तप के लिये विहितोद्यमा
हर-प्रेम में अतिशय पगी।
मेना मना करती उमा को
इस तरह कहने लगी॥

अभिलषित सब सुर गेह में
वत्से, कहाँ तप, तन कहाँ?
करता शिरीष सहन भ्रमर-पद
भार खग-पद का कहाँ?

मेना न रोक सकी उमा को
कठिन तप-उद्योग से।
रुकता अधोमुख जल न,
हटता मन न इप्सित-भोग से॥

गिरि से सखी द्वारा उमा ने
रुचि कही उपवास की।
अपनी तपस्या के लिये की
याचना वनवास की।

सुन योग्य आग्रह अचल ने,
अदेश गिरिजा को दिया
प्रस्थान गौरी शिखर पर,
गिरिराज-कन्या ने किया॥

हरिचन्दनांकित कलित मुक्ता-
हार उसने तज दिया।
उन्नत कुचों पर कुछ फटा
वल्कल कपिश धारण किया॥

जैसे कचों से सुघर मुख वैसे
जटा से भी सुघर।
पंकज भ्रमर से ही नहीं
सेवार - सँग भी रम्यतर॥

तप-हित पहन ली पार्वती ने
मेखला मौञ्जी प्रखर।
रोमाञ्च क्षण-क्षण जघन दोनों
होगये अति अरुण तर॥

जिससे अधर रँगती, ललित कुच-
कलित कन्दुक खेलती।
उस कुश-व्रणित कर से उमा
नित अक्षमाला फेरती॥

जो मृदुल शय्या पर गिरे कच-
पुष्प से ही थी दुखी।
वह बाहु की तकिया बना सोकर
मही पर थी सुखी॥

तन्वी लताओं में विलास,
कटाक्ष मृगियों में चपल।
फिर ग्रहण-हित तपने लगी
निज दो धरोहर रख विमल॥

घट-उरज-पय से सींच पौधों
की बढ़ाई तन-छटा।
सुत-स्नेह षड्मुख जन्म लेकर
भी न तनिक सके हटा॥

वन-बीज लालित मृग उमा से
इस तरह विश्वस्त थे।
निज नेत्र उनसे नापती
पर वे न होते त्रस्त थे॥

तप-निरत गिरिजा को तपस्वी
देखने आते सभी।
देखी न जाती धर्म से बूढ़े,
जनों में वय कभी॥

वन-जन्तुओं ने वैर छोड़ा,
अतिथि-पूजक तरु फलद।
निशिदिन हवन होता, उमा का
था तपोवन पूतिप्रद॥

जब पार्वती के इस कठिन
तप ने न कुछ शुभ फल दिया।
तब देह की सुधि भूल उसने
तप कठोर शुरू किया॥

जो गेंद से भी सिहरती वह
ऋषि - चरित करती सभी।
पंकज-कनक-कृत तन प्रकृति से
मृदुल भी था कठिन भी॥

वह ग्रीष्म में पावक जला
चहुँ ओर, निश्चल बैठती।
रवि के प्रखर कर जीत अपलक
देखती रवि को सती॥

रवि-किरण-तप्त उमा-वदन की
कमल की सी श्री हुई।
केवल अपांगों की जगह कुछ
ताप से काली हुई॥

केवल अयाचित जल तथा
शशि-किरण ही भोजन रहा।
तरु-वृत्ति से न अधिक उमा का
और कुछ भोजन रहा॥

सूरज तथा काष्ठाग्नि से
सन्तप्त गिरिजा ने सजल
ग्रीष्मान्त में जल - सिक्त भू-
सँग वाष्प छोड़ा नव विमल ॥

क्रमशः पलक पर क्षण रुके,
अधरोष्ठ पर, कुच पर गये
चिर तक वली से उतर नव
जल-विन्दु नाभी पर गये।

गृह-हीन प्रस्तर-शायिनी
झंझा अडिग सहती सदा।
विद्युद्दृगों से देखती
तप-साक्षि रजनी सर्वदा ॥

हिम-पवन-सहिता पौष-निशि में
सलिल में रहती उमा।
निशिभर वियुक्त रथांग-क्रन्दन
की व्यथा सहती उमा।

निशि में कमल-सम गन्ध-मय
कम्पित अधर-मय था वदन।
हत-श्री कमल हिम से हुए, पर
मुख सरोवर-श्री-सदन ॥

तप की पराकाष्ठा हुई, पत्ते
गिरे भोजन हुए।
छोड़ा उसे भी वन 'अपर्णा'
चकित सब ऋषि-जन हुए॥

कोमल-मृणाल-सदृश स्ववपु को
क्षीण व्रत से कर दिया।
दृढ़-देह-जन्य तपस्वियों का
तप अधः तप से किया॥

मृगचर्म-दंड लिये धधकते
ब्रह्मचर्य - प्रताप से।
कोई जटाधर ब्रह्मचारी
इस तपोवन में लसे॥

गिरिराज-कन्या ने किया
अर्चन अतिथि का ध्यान से।
'निज-सदृश व्यक्ति विशेष को
बुध पूजते सम्मान से॥'

स्वीकारकर पूजा उमा की
श्रान्ति पथ की दूर कर
बोले वचन ऋजुचक्षु से
लखते उमा का मुख प्रवर॥

मिलते समित्कुश हैं यहाँ ?
है सलिल मज्जन-हित विमल ?
तन शक्तिभर तप-निरत रहती ?
धर्म-साधन तनसवल ॥

त्वत्पाणि-सिंचित तरुलता के
मृदुल ये पल्लव नये।
चिरकाल से लाक्षा-रहित
तव अधर-सम हैं बन गये ॥

कर-कुश-हरण कारी मृगों में
मन तुम्हारा तुष्ट है ?
चल-नयन से दृग-साम्य करते
तू अमित सन्तुष्ट है ?

अघ के लिए सौन्दर्य होता
है न, यह वच सत्य है।
शुचिदर्शने, तव शील ही
मुनि-वृन्द-शिक्षक तथ्य है ॥

जल गांग से, सप्तर्षि-बलि-
सुम से न पूत हुआ तथा
तेरे अनाविल शुचि-चरित से
गिरि पवित्र हुआ यथा ॥

कामार्थ से वर धर्म है, यह
ठीक जँचता आज है।
कामार्थ तज, ले धर्म उर में
तू बनी शिरताज है॥

नतगात्रि, यह समुचित न है
मुझको पराया जानना।
है सुजन - साप्तपदीन - मैत्री
उचित है यह मानना॥

ब्राह्मण-सुलभ कर धृष्टता
कुछ पूछना हूँ चाहता।
यदि गोपनीय न बात हो तो
हे उमे, मुझको बता॥

नव वय, मनोहर वपु, प्रजापति
कुल, अमर वैभव अहो।
अब चाहिये क्या, किसलिये
यह तप तुम्हारा है कहो॥

पति-कृत असह्य अनिष्ट से भी
मानिनी होती नता।
वह भी अपार विचार करने
से न तुममें दीखता॥

दुख-शोक-योग्य न तन,
अवज्ञा भी न जनक गिरीश-घर।
अन्याक्रमण भी है न, अहि-मणि-
हित उठावे कौन कर॥

हो वय-विभूषण त्याग, वार्धक-
शोभि त्वक् से इस तरह।
रजनी अरुण को चाहती, सन्ध्या
समय ही जिस तरह॥

है पितृ-भू ही स्वर्ग, पति
यदि चाहती तो व्यर्थ श्रम।
मणि ढूँढ़ता जन को न, जन ही
ढूँढ़ता मणि, यह नियम॥

कहते गरम निःश्वास, मन
सन्देह फिर भी कर रहा।
तव है न प्रार्थयितव्य कैसे
कठिन प्रार्थित है महा॥

अभिलषित वह वर निठुर है
तव चाह जो करता नहीं।
पीली जटाओं की अहो,
परवाह टुक करता नहीं॥

मुनि-कठिन-व्रत से तुम बनी
दिन चन्द्र-रेखा सी अहो।
लखकर तुम्हें किसका न चित
होगा महा व्याकुल कहो॥

जिसका न मुख चिर लक्ष्य बनता
तव दृगों का, दीन वह।
छवि-गर्व करता प्रिय तुम्हारा
व्यर्थ, सुख से हीन वह॥

कबतक करोगी तप उमे, मम
अर्ध तप ले लो, अहो।
अभिलषित वर लो प्राप्त
कर, पर कौन वह वर है कहो।

द्विज से न बोल सकी, सखी को
वर जताने के लिये।
इंगित किया कज्जल-रहित
दृग से बताने के लिये॥

बोली सखी हे विप्र, सुनिये
चाहते यदि जानना॥
जिसके लिये गिरिजा तपा
मृदु-काय क्षीण रही बना॥

इन्द्रादिकों की कर अवज्ञा
मानिनी यह पार्वती ।
स्मर-दहन बाद स्मरारि को
निज पति बनाना चाहती ॥

असफल रहा, शिव के भयद
हुंकार से मुड़कर भगा ॥
पर काय-हीन मनोज का वह
शर उमा-उर में लगा ॥

तब से पिता-गृह-हिम-शिला पर
चैन से सोई नहीं ।
स्मर-ज्वर-शमन-हित मलय-चन्दन
धूसरा गिरिजा रही ॥

शिव के चरित का गान करती
सदुःख रो उठती सदा ।
किन्नर-सुताओं को अमित
रो-रो रुलाती सर्वदा ॥

निश्यन्त में 'जाते कहाँ शिव'
बड़बड़ाती पार्वती ।
झूठे गले में बाहु-बन्धन
डाल देती है सती ॥

सर्वज्ञ बुध कहते तुम्हें क्यों
जानते मुझको न हो ?
यों हस्त-लिखित उमेश को
देती उलहना है अहो ।

शिव-प्राप्ति-हित जब पार्वती
को यत्न था कोई नहीं ।
तब जनक के आदेश से
आई तपोवन में यहीं ॥

तप-साक्षिरूप विटप उमा-
रोपित हुए फलमय सभी ।
शिव-प्राप्ति का अंकुर तनिक
पर दीखता न कहीं अभी ॥

शोषित मही पर वृष्टि-सम
सखि-साश्रु-दृग-दृष्टा सजल ।
तप-कृश उमा पर हर-अनुग्रह-
दृष्टि कब होगी विमल ॥

सखि से सभी अभिप्राय गिरिजा
का समझकर सत्य ही ॥
वर्णी छिपाकर रूप बोले
यह हँसी है या सही ॥

सुन्दर-मुकुल-करजाग्र से ले
स्फटिक की माला प्रवर।
चिरकाल बाद सलज्ज बोली
पार्वती द्विज से सिहर॥

वेदज्ञवर, जो है सुना वह
ठीक है, वह सत्य है।
शिव के लिये ही तप तथा
शिव ही मनोरथ तथ्य है॥

तब ब्रह्मचारी ने कहा
मैं शम्भु को हूँ जानता।
उस अशुभ को तुम चाहती
यह सद्विचार न मानता॥

कर-बीच मंगल-सूत्र उसके
हाथ में अहि वेतरह।
प्रथमावलम्बन हो सकेगा
शम्भु कर से किस तरह॥

सोचो स्वयं कल-हंस चिह्न
वधू-दुकूल कलित कहाँ।
गजचर्म - शोणित - विन्दुवर्षी
-अशुभ अमित घृणित कहाँ॥

तव अरुण - चरण - चतुष्क
गृह - सुमनावली में मृदुलतर।
सम्बन्ध उनका प्रेत-भू के
साथ होगा अति अवर॥

शिव - साथ आलिङ्गन सुलभ
यदि हो सका तो भी, विफल।
चन्दन-खचित कुच पर चिता का
भस्म क्या होगा विमल?

यह प्रथम ही परिहास होगा
नाग-वाहन तज विमन
बूढ़े वृषभ पर तुम्ह वधू को
लख हँसेंगे शिष्ट-जन॥

शिव - प्राप्ति इच्छा से अहो
है बात दो ही शोक की।
सुन्दर सुखद शशि की कला
दृग-कौमुदी तुम लोक की॥

तन है विरूप-नयन, जनम का
कुछ ठिकाना है नहीं।
करती प्रगट धन नग्नता,
इस तरह वर होता कहीं?

उससे हटा लो मन, कहाँ वह,
पुण्य चिह्न तुम कहाँ।
बुध यूप-सत्संस्कार मरघट-
शूल का करते कहाँ ?

प्रतिकूल वादी जान ब्राह्मण को,
अधर कँपने लगे।
भ्रू-भंग-मय बाँके उमा के
अरुण दृग तकने लगे॥

बोली उमा, हैं जानते शिव
को न आप कृपा करें।
जड़ साधु के दुर्बोध हेतुक
चरित की निन्दा करें॥

विभवेच्छु अशुभनिवृत्ति-हित
गन्धादि का सेवन करें।
तृष्णा-विहीन निरीह प्रभु क्यों
क्षण विभव पर मन करें॥

धन - हीन शिव धन - हेतु
मरघटवास फिर भी ईश हैं।
कोई न उनको जानता, वे भीम
शिव जगदीश हैं॥

भूषण भुजग, पट गज-अजिन,
चौमी कपाली हों तथा।
हों शशि - शिरोभूषण, न कोई
जानता वे हैं यथा॥

पा संग शिव-तन का चिता-रज
पूत होती है सदा।
ताण्डव-पतित वह भस्म
सुर शिर पर चढ़ाते सर्वदा॥

ऐरावतारोही वृषारोही-
चरण पर गिर विनत!
विकसित कलपतरु की
कुसुम-रज से अरुण करते सतत॥

दूषण बताने में मुझे दी
एक बात भली बता।
जो ब्रह्म का भी हेतु, उसके
जन्म - कुल का क्या पता॥

बस कीजिये जैसा सुना है
ठीक, पर मम मन वहीं।
जो काम-वृत्ति, उन्हें तनिक
परवाह निन्दा की नहीं॥

स्फुरितोष्ठ वटु को सखि!
हटा, कुछ मत कहे, उससे कहो।
'सुजनापवादी ही न श्रोता
भी अघी होता अहो॥'

मैं ही चलूँ, कुच - भिन्न-चीरा
पार्वती ने चल दिया।
निज रूप धर हँसकर महेश्वर
ने उमा को धर लिया॥

लख शम्भु को कँपने लगी,
भिगने लगी, सिहरी, थकी।
पथ-गिरि-हता व्याकुल नदी
सम चल सकी न ठहर सकी॥

शिव ने कहा तप से तुम्हारे,
क्रीत दास बना अमल।
फल पा, सती तप से हटी
तप - कष्ट भूल गयी सकल॥

—:०:—

षष्ठ सर्ग

संस्कृति
प्रेम-विवाह
वृद्धि, समाज-
सापेक्षता

शिव से सखी द्वारा उमा
बोली यही अब कीजिए।
मेरे पिता से प्रेम पूर्वक,
माँग मुझको लीजिये ॥

यों उक्तवृत्ता, शम्भू-निरता
पार्वती शोभित हुई।
ज्यों मधु-पिकी-मुखरा
लता सहकार की शोभित हुई ॥

कहकर तथाऽस्तु उमेश
कथमपि पार्वती को छोड़कर
करने लगे सादर स्मरण शुचि
सप्त-ऋषियों का प्रवर ॥

आकाश में निज देह की
करते प्रकाशित छवि विकट
सप्तर्षि शीघ्र अरुन्धती के
साथ आये प्रभु-निकट ॥

तट - कल्प - कुसुमोत्किर - तरंग।
हस्ति-मद से सुरभि-मय
आकाश-गंगा के प्रवाहों
में किये मज्जन अभय ॥

मुक्तोपवीत धरे, कनक स्वग्धर
रतन रुद्राक्ष - धर।
संन्यास-व्रत में लीन आये
कल्पतरु-सम रम्यतर ॥

सप्तर्षियों को लख, अधः
जिसके हयों की गति-क्रिया।
उस सूर्य ने निज ध्वज झुका
झुक विनत अभिवादन किया ॥

प्रलयापदा में अभय, भू-
उद्धार-बेला में अभय
बाराह-दंष्ट्रा में लगी भू-
साथ आये शान्ति-मय ॥

विधि-सृष्ट्यनन्तर शेष रचना
पूर्ति करने से सकल
प्राचीन ऋषि कहते पुरातन
सृष्टि-निर्माता विमल ॥

पिछले जनम के शुद्ध-तप से
सिद्ध-तापस हो गये।
हैं भोगते तप-फल वही
फिर घोर तप करते नये ॥

ऋषि-बीच पति-पद में
लगाये युगल नयन अरुन्धती।
प्रत्यक्ष तप की सिद्धि-सम
शोभित हुई पावन सती ॥

सप्तर्षि और अरुन्धती को
शम्भु ने देखा अमल
सम दृष्टि से स्त्री - पुरुष को।
'सज्जन-चरित होता विमल' ॥

लख पतिव्रता को शम्भु का
स्त्री-जाति प्रति पिघला हिया।
सम्पन्न होती पतिव्रता से
क्योंकि सब धार्मिक क्रिया॥

शुचि धर्म ने शिव में उमा प्रति
प्रेम पैदा कर दिया।
अपराध-भीत मनोज को
आशा हुई, मरकर जिया॥

अति प्रीति-पुलकित हो
निखिल वेदाङ्ग वेदों में पगे
सप्तर्षि कर जगदीश-पूजा
शुचि वचन कहने लगे॥

हमने पढ़े जो वेद, पावक
में हवन विधि से किया
परिपक्व उसका आज हो फल
है मिला, जो तप किया॥

अध्यक्ष जग के आप के
हम लोग पद-सम्मुख नये
हम धन्य, क्षण भर आप के
निष्काम मन में बस गये।

जिसके हृदय में वास करत
आप, वह कृतकृत्य-वर ।
जो आप के मन में बसे
वह श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठतर ।।

रवि-चन्द्र से ऊँची जगह पर
हम सभी का वास है ।
पर स्मृति-कृपा से और
ऊँचे चढ़ गये, उल्लास है ।।

सत्कृत हुए जो आप से
निज को अधिक हैं मानते ।
होता स्वगुण-विश्वास, सज्जन-
मान से ही जगपते !

अनुध्यान-जन्या प्रीति हमको
हो गई जो है विभो !
हे अन्तरात्मा आप से कैसे
कहें उसको प्रभो !

हम देखते प्रत्यक्ष किन्तु न
तत्त्वत: हैं जानते ।
हो मुदित अपने को कहें
मति से परे, हे धीपते !

१२ ८९

जिससे सृजन करते तथा हैं
पालते, संहारते।
वह कौन सी यह मूर्त्ति
सम्मुख है, कहें गिरिजापते!

यह प्रार्थना दुर्लभ अभी हम
एक ओर इसे धरें।
अब चिन्तितोपस्थित हमें
आदेश दें, हम क्या करें॥

भालेन्दु की तन्वी कला को
रद-करों से वृद्धिकर
कहने लगे सप्तर्षियों से
विश्वपति सस्मित सुघर।

यह विदित है स्वार्थार्थ कोई
कार्य मैं करता न हूँ
मम अष्ट कार्यों से विदित यह
अधिक इससे क्या कहूँ॥

चातक तृषित वर्षार्थ घन से
प्रार्थना करते यथा
मम-पुत्र-हित अरि-दुखित सुर
मुझसे विनय करते तथा॥

पावक-ज्वलन-हित अरणि है
यजमान जैसे चाहता
सुत के लिये मैं भी उमा को
आज वैसे चाहता ॥

इससे हिमालय से उमा-हित
आप लोग कहें अभय।
सज्जन-विहित सम्बन्ध होता
है, विकार-रहित सदय ॥

उन्नत प्रतिष्ठित भूमिधर
गिरिराज से सम्बन्ध कर
कृतकृत्य मुझको भी समझिये
हे महत्तप ऋषि निकर !

कन्यार्थ यों गिरि से कहें
मम व्यर्थ होगा यह कथन।
बुध तब चरित आचार का
उपदेश करते, कर यतन ॥

यह पूजनीय अरुन्धती
इस कार्य में देगी मदद।
प्रायः सुकार्यों में पुरन्ध्री-
चतुरता होती फलद ॥

इस हेतु ओषधि प्रस्थ नामक
हिम - नगर में जाइये।
मिल अद्रि से, मम निकट
कोशी-पात-स्थल पर आइये ॥

योगी-प्रवर वृष केतु को
उद्वाह - उत्सुक देखकर
सप्तर्षियों ने छोड़ दी
गार्हस्थ्य मूलक लाज वर ॥

स्वीकार कर आज्ञा समुद
प्रस्थान ऋषियों ने किया।
सानन्द सांकेतिक जगह पर
शम्भु ने भी चल दिया ॥

सप्तर्षि मन सम वेगवाले
तनिक भी न कहीं थमे।
असि-नील - अम्बर में उड़े
पहुँचे हिमालय-नगर में ॥

धन देख ओषधि प्रस्थ का
अलकापुरी को शोक था।
गिरिराज का वह नगर मानो
दूसरा सुरलोक था ॥

गंगा-प्रवाहों से घिरा
ज्वलितौषधों से प्रज्वलित
माणिक्यवरणावृत सुरक्षित
नगर था अतिशय कलित ॥

जित-सिंह-भय कुंजर तथा
बिल-योनि अश्व विराजते
वन-देवता - योषित मनोहर
यक्ष - किन्नर राजते ॥

उस नगर के प्रत्येक घर पर
घिर पयोधर गरजते ।
गति-ताल ही से नित
मुरज-गम्भीर-ध्वनि सब समझते ॥

चंचल-लताओं के वसन से
कल्पतरु-शोभित प्रवर ।
वे पौर - जन निर्मित न थे,
गृह - पताका - सम सुघर ॥

निशि में स्फटिक के आसवालय
पर नक्षत-छाया पड़ी ।
मानों सुमों से ही सजा गृह,
थी भवन-शोभा बड़ी ॥

दुर्दिन, निशा हो किन्तु औषध-
ज्योति से पथ ज्योति-मय,
अभिसारिकाएँ अभिसरण
प्रियतम-निकट करतीं अभय ॥

गिरिराज के पुर में मनोहर
वय जवानी तक खतम।
स्मर से मरण, रति-खेद-जन्या
नींद ही मूर्च्छा अलम् ॥

भ्रू-भंग से, चल ओष्ठ-अंगुलि
से प्रणय में कोप कर
याचक जवानों को बनातीं
हैं युवतियाँ अतिसुघर ॥

गन्धाढ्य गिरिवर गन्धमादन
बाहरी आराम था
तत्तरु कलप-तल सुर-
निकर करता अलस विश्राम था ॥

ऐसे हिमालय के नगर को
देख शुचि सुन्दर बना
स्वर्गाभिसन्धि - विमत्त - सुकृत
को कह उठे ऋषि वंचना ॥

लिखिताग्नि-सम उनको,
निरखते द्वास्थ उन्मुख हो अभी
तब तक हिमालय के मनोहर
सद्म पर पहुँचे सभी ॥

सप्तर्षि उतरे गगन से क्रमश:
प्रथम बूढ़े चले।
शोभित हुए हों सूर्य के प्रतिबिम्ब
ज्यों जल के तले ॥

पद-भार से भू को झुका ले
सलिल अर्चन के लिये।
ऋषि-ओर सादर बढ़ चले
गिरि भक्ति-श्रद्धा ले हिये ॥

ताम्रोष्ठ गैरिक, वक्ष प्रस्तर
सरल तरु ही भुज सबल।
सप्तर्षियों ने अद्रि को
देखा प्रकृति से ही प्रबल ॥

उन पूज्य ऋषियों का सविधि
सत्कार हिमगिरि ने किया।
फिर तापसों को पथ दिखाते
निज हरम में चल दिया ॥

सादर बिठाकर वेत्र के
मृदु-मंजु-आसन पर प्रवर।
प्रांजलि हिमालय ऋषिवरों
से वचन यों बोले सुघर॥

सुम-रहित फल के सदृश
वारिद-रहित वर्षण सम विमल
पावन अचानक दिव्यतम
दर्शन हुए यह भाग्य - फल॥

मैं आप लोगों की कृपा से
बुद्ध जड़ से बन गया।
अय से सुवर्ण हुआ, मही से
स्वर्ग पर मैं चढ़ गया॥

अब से प्रजाजन-शुद्धि-हित
मेरा निकेत हुआ फलद।
सज्जन-अधिष्ठित स्थान ही है
तीर्थ होता मोद-प्रद॥

दो वस्तुओं से मानता हूँ
पूत निज को सर्वथा।
गंगा-पतन से शीश पर,
तव धौत-पद-जल से तथा॥

मम काय दो, दोनों कृपा से
आप की अतिशय अमल।
कैङ्कर्य से जंगम तथा
स्थावर पदांकित से विमल॥

पावन सुदर्शन से बढ़ा
इतना हृदय में हर्ष है।
दिग्व्याप्त मेरे अंग में
अटता नहीं, उत्कर्ष है॥

केवल गुहागत ही निविडतम
का न आज विनाश है
रज-जन्य मेरे हृदय का
अज्ञान-तम भी नाश है॥

कर्त्तव्य लखता हूँ न, यदि
हो तो न वह दुर्लभ कभी।
पावन बनाने के लिये ही
आप आये हैं सभी॥

हे ऋषिवरो, तो भी सदय
आदेश मुझको दीजिये
होते मुदित हैं भृत्य प्रभु,
विनियोग से ही निज हिये॥

मैं हूँ, प्रिया है और मम
कुल-प्राण कन्या है यहीं।
जिससे सफल हो कार्य बोलें,
वित्त में आस्था नहीं॥

निकली हिमालय के दरी-मुख
से मृदुलवाणी अमल।
प्रतिशब्द से मानों कहा दो
बार हिमगिरि ने अचल॥

सानन्द पर्वतराज की सुनकर
मधुर बातें सकल।
ऋषि अंगिरा गिरिराज से
बोले वचन सुखकर सबल॥

तुमने कहा जो कुछ, उचित है
हर तरह से सत्य है।
मन भी तुम्हारा शिखर के
सम ही समुन्नत तथ्य है॥

कहते तुम्हें हरि, योग्य ही है
तव शरीर अपार है।
गिरिवर, चराचर जगत का
तव कुक्षि ही आधार है॥

बिस-मृदुल-फण से किस तरह
अहि-पति धरा धरता कहो।
यदि आरसातल चरण से
भू को न धरते तुम अहो॥

जैसी तुम्हारी पूत नदियाँ
जग-कलुष हरतीं सदा।
वैसी तुम्हारी कीर्ति भी
अघ-ओघ हरती सर्वदा॥

हरि के चरण नख से निकलकर
स्तुत्य गंगा है यथा
तव शीश से भी निकलकर
अतिशय प्रशंसित है तथा

बलि-यज्ञ में ही विष्णु-महिमा
एकबार प्रसिद्ध है।
महिमा तुम्हारी तो प्रकृति से
नित्य व्यापक सिद्ध है॥

मख-भाग-भुक्तों में तुम्हारा
एक पावन स्थान है।
स्वर्णिम सुमेरु विफल, न तव
सम्मुख कहीं सम्मान है॥

पाषाणमय स्थिर काय में
काठिन्य अर्पण कर दिया।
यह भक्ति-नत तव वपु
सुजन-पूजित हुआ तव मृदु हिया॥

आगमन-कार्य सुनो गिरे,
यह कार्य तव ही है शुभद।
हम मांगलिक-उपदेश-
भल-भागी बनेंगे मोद-प्रद॥

अस्पृष्ट पुरुषान्तर अमर
अणिमादि गुण से युक्त जो।
चन्द्रार्ध-धर ईश्वर कहा
जाता, जगत से मुक्त जो॥

मूर्त्यष्ट के अन्योन्य-बल से
विश्व यों धारण किया।
ज्यों घोटकों से सबल धारण
विमल यान गया किया॥

जिस क्षेत्रवर्ती को हृदय में
खोजते योगी फलद।
कहते महर्षि स्वरूप को
जिसके, अनामय मोक्ष-पद॥

जग-कर्म-साक्षी वरद शंकर
हम सभी द्वारा सती
तव सुभग कन्या पार्वती
को माँगता है सद्व्रती ॥

वागर्थ इव शिव को सुता से
युक्त करना है उचित।
सद्भर्तृ को देकर सुता होता
पिता अतिशय मुदित ॥

जितने चराचर भूत गण हैं
सृष्ट के हे अचलवर।
उनकी उमा माता बनेगी
और जनक विरक्त हर ॥

नम्राभिवादन शम्भु का कर
अमित श्रद्धा से अमर
रंजित करेंगे पद उमा के
शिर-रतन-कर से प्रवर ॥

गिरिजा वधू, तुम दिव्य दाता
हम सभी प्रर्थी गिरे!
वर शम्भु, इससे अधिक
कुल-सम्मान क्या होगा गिरे!

कोई न उससे वन्द्य पर वह
वन्द्य सबसे शुचितनो!
कन्या उमा-सम्बन्ध से उस
विश्व-गुरु का गुरु बनो॥

सप्तर्षि करते बात थे गिरि-
निकट नतमुख थी सती।
लीला - कमल - पत्रावली
को गिन रही थी पार्वती॥

दानेच्छु था तो भी अचल
मेना-वदन लखने लगा।
प्राय: गृहस्थ सुतार्थ
रहता निज प्रिया-सम्मति-पगा॥

पति के अभीप्सित को किया
स्वीकार मेना ने सरति।
पति-चाह के अनुकूल ही
रहती सती-साध्वी सनति॥

यह युक्त उत्तर बुद्धि के
द्वारा अचल ने सोचकर
वाक्यान्त में भूषित उमा को
कर दिया सम्मुख सुवर॥

माँगी गई हो प्रियसुते,
शिव के लिये तुम श्रद्धया।
याचक बने सप्तर्षि हैं,
गार्हस्थ्य-फल मैं पा गया॥

यह कह सुता से समुद फिर
ऋषि-वृन्द से बोले अचल।
करती प्रणाम त्रिनेत्र - पत्नी,
आप लोगों का विमल॥

ऋषिगण - अभीप्सित - सिद्धि
पाकर गिरि वचन स्वीकार कर।
आशीर्वचन बोले उमा से
विमल फलद उदारवर॥

नम्राभिवादन से कनक - कुण्डल
गिरा, शोभित श्रिया।
निज अंक मध्य अरुन्धती
ने लज्जिता को ले लिया॥

दुहिता सनेह विकल हुई
मेना सजल दृग हो गई।
वर के अनन्य अपूर्व गुण से
फिर व्यथा सब खो गई॥

हर-बन्धु ने तत्क्षण वहीं
वैवाहिकी तिथि पूछ ली।
चौथे दिवस उद्वाह-तिथि
कह मण्डली ऋषि की चली ॥

ऋषि अचल से होकर विदा
शिव के निकट आये भले।
कह सकल वृत्त त्रिनेत्र से
आकाश में फिर उड़ चले ॥

गिरिजेच्छु शिव के तीन दिन वे
बीतने दुख से लगे।
जब विभु हुए व्याकुल, अपर
तब क्यों न भावों में पगे ॥

—:o:—

सप्तम सर्ग

सितपक्ष में जामित्र गुण से
युक्त तिथि में मोद से
गिरि ने विवाह किया उमा का
बन्धु - सहित विनोद से ॥

शुभ कार्य - विकल पुरन्ध्रि,
ध्वज-तोरण सजे घर में सभी ।
जन-स्वजन में अन्तर न, मानो
एक ही घर के सभी ॥

सन्तानपुष्पावृत महापथ
नव ध्वजाओं से रचित
वह नगर शोभित स्वर्ग-सा था
स्वर्ण-तोरण से खचित ॥

चिरकाल - दृष्टा की तरह
मृत-उत्थिता की तरह ही।
सन्निधिविवाहा को सजल
माँ-बाप ने देखा सही ॥

फिर - फिर हुई भूषित, गई
फिर-फिर पुरन्ध्री-अंक में।
सम्बन्धि-भिन्न, गिरीन्द्र-कुल-
कुल स्नेह गिरिजा में थमे ॥

शुभ फाल्गुनी, नक्षत्र मैत्र
मुहूर्त्त में पति - सुत-वती
कुल - रमणियों के हाथ से
भूषित हुई शुचि पार्वती ॥

शुचि - श्वेत - सर्षप - युक्त
दूर्वाङ्कुर - कलित स्नानीय वर
कौशेय-पट निर्नाभि गिरिजा
ने किया धारण स - शर ॥

नव-बाण के सम्पर्क से
शोभित हुई बाला तथा
बहुलान्त में रवि-किरण से
बढ़ती शशी - रेखा यथा ॥

मृदु लोध से उबटी हुई कालेय
से सुरभित अमल
स्नानार्थ स्त्री-जन - संग आई
मज्जनालय में विमल ॥

मुक्ताक्त तोरण - कलित
मण्डप - मध्य, रत्नशिला-तले।
कंचन - कलस-जल से स्त्रियों ने
स्नान करवाया भले ॥

शुभ स्नात वर-शुचि - पट पहन
शोभित हुई वह इस तरह।
सलिलाभिषिक्त प्रफुल्ल
काशमयी मही हो जिस तरह ॥

मणि - स्तम्भ - युक्त, वितान-मय
शुचि ललित आसन से विमल
उद्वाह - वेदी मध्य आई
पतिव्रतालिङ्गित अमल ॥

सलज्जा उमा को पूर्व मुख
बिठला स्त्रियाँ लखने लगीं।
क्षण भर प्रसाधन - काल वे
गिरिजा - सहज - छवि में पगीं॥

धूपोष्म से कच-जल सुखा
कच-बीच कुसुमावलि हँसी।
दूर्वाक्त - हरित - मधूक - माला
पार्वती-गल में लसी॥

रचिता, अरुण - गोरोचना-
सित-अगरु से गिरिजा हुई।
तीरस्थ-रक्त - रथाङ्ग - अंकित
मात गाङ्ग प्रभा हुई॥

अलि-लग्न सरसिज का, स-घन
शशि-बिम्ब का अपमान कर
सादृश्य-भंग किया उमा ने
अलक-मय मुख से सुघर॥

शुचिलोध्र विशद कपोल थे
गोरोचना से गौर तर।
उस पर यवाङ्कुर ने श्रवण के
दृग लिये आकृष्ट कर॥

रेखा-विभक्त, अमल, अरुण
बढ़ती स्फुरण से छवि-कथा
आसन्न जिसका कान्ति-फल
ऐसा उमा-अधरोष्ठ था ॥

पद रँग सखी बोली, 'रख
इस पर कला शशि की पिया।
उसने सखी को मौन विह्वल
माल्य से ताडन किया ॥

विस्तृत कमल - दल - सम
उमा-दृग में लगे अंजन असित
सौन्दर्य्य की रुचि से न, केवल
मंगलार्थ नियम - सहित ॥

शोभित हुई भूषण पहनकर
शैल - तनया इस तरह।
कुसुमित लता, उडुमय निशा
खग-मय नदी हो जिस तरह ॥

सज - धज उमा ने मुकुर में
निज काय-छवि देखी अमल
शिव के लिये व्याकुल हुई
'स्त्री - वेश पत्यालोक - फल ॥'

दो अँगुलियों से ले अमल
हरिताल और मन:शिला
श्रुति लग्नभूषण मुख उमा का
उद्‌र्ध्‌वकर, मानस खिला

गिरिजा कुचोदय काल से ही
जो मनोरथ था हुआ
उस काल मेना-कृत वही
शुभ तिलक रूप अहा, हुआ ।।

पर-स्थान पर मेना उमा को
ले चली आई सधी।
धात्र्यङ्गुली से मांगलिक
शुचि हाथ में उर्णा बँधी ।।

पट - धारिणी दर्पणमयी
गिरिजा हुई शोभित तथा।
फेनिल जलधि-वेला यथा
शरदिन्दु-मय रजनी यथा ।।

कर्मज्ञ मेना ने स्वकुल-सुर का
प्रणाम समुद करा
पद-ग्रहण करवाया सती-गण
का सप्रेम कुशल-भरा ।।

'पति का अखण्डित प्रेम लो'
आशीष सतियों ने दिया।
पश्चात् शिव कार्यार्थ लेकर
विफल जन - अशिष किया ॥

इच्छा विभूत्यनुरूप गिरिजा
का सुकृत्य समाप्त कर
करने लगा शिव की प्रतीक्षा
स्वजन-संग अचल-प्रवर ॥

उस काल ही कैलास पर
उद्वाह-भूषण ध्यान से
ब्राह्मी-प्रभृति ने शम्भु के
आगे रखे सम्मान से ॥

शिव ने विभूषण मातृ-आदर
के लिये ही छू दिया।
हर-वेश ने ही व्याह की श्री
को सहज धारण किया ॥

गन्धानुलेपन भस्म, शेखर-
श्री मनोज्ञ कपाल ही।
गज-चर्म ही उद्वाह का पट
बन गया तत्काल ही ॥

भालस्थ दीप्त - कनीनिका-मय
शम्भु का जो है नयन
हरितालमय वह ही तिलक
शुचि बन गया शोभा-सदन ॥

भूषण पहनने के लिये जो
रुचिर स्थान सही रहे
उन पर घिरे अहि, पर
ललित फण-रतन वैसे ही रहे ॥

अतिशय चमकता दिवस में भी
अंक-रहित शिरः शशी ।
वह मुकुट चूड़ामणि गया बन
अधिक कान्त हुए वशी ॥

अद्भुत किया शृङ्गार तन का
शम्भु ने आ हर्ष में ।
देखी स्वछवि आसन्न-गण-
उपनीत शुचि आदर्श में ॥

हरि चर्म वेष्ठित, भक्ति-नत कैलास-
सम वृष-पीठ पर
नन्दी - भुजाओं के सहारे
चढ़ गये सानन्द हर ॥

पश्चात् माताएँ स्ववाहन
पर चलीं, कुण्डल चपल।
छवि-रेणु-लोहित वदन थे
ज्यों गगन-पद्माकर नवल ॥

भूषण कपालों के पहन
पश्चात् काली भी चली।
बिजली - बलाका - मय - असित-
घन-पंक्ति सम अतिशय भली ॥

गण वाद्य मंगल के बजाते
चल पड़े उत्साह से।
सुर समुद सेवा के लिये
रव सुन विमानों में लसे ॥

पहना तपन ने विश्वकर्मा-
रचित छत्र नवल प्रवर।
तत्पट लटकता था धवल
ज्यों जाह्नवी बहती लहर ॥

शुचि मूर्त्त यमुना जाह्नवी ने
प्रेम से चामर झले।
सरिता-प्रवाह अभाव में भी
हंसमय तन झलमले ॥

विधि-विष्णु भी जयकार करते
शम्भु सम्मुख आ गये।
हवि से अनल सम शम्भु-
महिमा को बढ़ाते छा गये॥

वह एक, तीन हुए, न उनमें
लघु-महा कोई रहा।
उनमें परस्पर एक पर का
आद्य-भाव बना रहा॥

दिग्पाल आये तज विभव
हर - दर्शनार्थ सभाव नत।
नन्दी - प्रदर्शित शम्भु को
सादर प्रणाम किया विनत॥

शिरसा, गिरा विधि विष्णु को
देवेन्द्र को मुसुकान से।
लखकर इतर सुर-वृन्द को
प्रमुदित किया सम्मान से॥

सप्तर्षियों ने शम्भु की जय कह
विमल आशिष दिया।
उद्वाह में शिव ने उन्हें ऋत्विग्
बना आदर किया॥

चन्द्रार्धधर शंकर अचलपुर
ओर जब जाने लगे।
गन्धर्व वीन बजा त्रिपुर-
हर-चरित तब गाने लगे ॥

नभ-मध्य गामी सरव घुघरू-
सहित वृषभ विनोद से
घन में कँपाता शृङ्गशिव को
ले चला आमोद से ॥

रक्षित अचल से दिव्य ओषधि
प्रस्थ नाम नगर जहाँ।
शिव - दृष्टि - कंचन - सूत्र से
कर्षित वृषभ पहुँचा वहाँ ॥

घन-नीलकण्ठ, पुरस्थ - दर्शक-
उर्द्ध्व - लोचन-दृष्ट वर।
उतरे स्वशर - चिह्नित गगन
पथ से नगर के पास हर ॥

पुष्पित विटपमय शिखर सम
अधिरूढ - जन - करिराज से
स्वागत किया सन्तुष्ट गिरि ने
सकल स्वजन-समाज से ॥

गिरि-शम्भु के समुदाय आ
पुर में गये मिल इस तरह।
व्रत-सेतु सलिल-समूह दो,
मिलते परस्पर जिस तरह॥

भववन्द्य हर-कृत नमन से
गिरिराज लज्जित हो गये।
हर-विभव से शिर था झुका, जाना
न, सुधि सब खो गये॥

सन्तुष्ट गिरि दामाद को
सत्पथ दिखाते प्रीति से।
लाये कुसुममय पन्थ से
निज नगर में, श्रुति-रीति से॥

उस समय सब तज कार्य कोठों
पर स्त्रियाँ व्याकुल हुईं।
शुभ शम्भु-दर्शन के लिये
वे इस तरह आकुल हुईं॥

थी केश कोई बाँधती, तज
हस्त-धृत कच-जाल को
दौड़ी गई आलोक-पथ पर
देखने शशिभाल को॥

जाते रँगे द्रवराग से थे पद,
उन्हें झट खींच कर
कोई गई आलोक पथ तक
पन्थ रँगती अति सुघर ॥

दक्षिण नयन आँजा गया था
वामदृग पर कर रुका।
दौड़ी शलाका ही लिये आलोक-
पथ तक उत्सुका ॥

गति-वेग से नीवी खुली
उसको न बाँध सकी, चली।
पकड़ी रही कर से, मची थी
शम्भु - दर्शन - खलबली ॥

सत्वर उठी, अर्धाचिता रसना-
रतन पगपग गिरे।
केवल मचे कुछ सूत्र ही
अँगुष्ठ के जड़ में घिरे ॥

मद-गन्ध-मय, चल-दृग-भ्रमर-मय
नारियों के थे वदन।
आलोक-पथ शतपत्र-भूषित
बन गये शोभा-सदन ॥

शशिमौलि की शशिकान्ति से
प्रासाद-रंग द्विगुण हुआ।
तोरण-पताका-व्याप्त पथ पर।
शम्भु-गमन सगुण हुआ॥

उस दर्शनीय त्रिनेत्र को पुर की
स्त्रियाँ लखने लगीं।
सब इन्द्रियाँ ज्यों आ नयन में
शम्भु - दर्शन में पगीं॥

था उचित ही, कोमल उमा ने
शम्भु-हित जो तप किया।
दासी बने वह सफल, जो
अंकस्थ उसकी बात क्या॥

शिव-पार्वती की जो न विधि
जोड़ी मिला देते विमल
तो रूप के निर्माण का सब
यत्न ही होता विफल॥

संरम्भ से शिव ने मदन का
देह - दाह न है किया।
उसने निरखकर शम्भु-छवि
निज गात्र-भस्म स्वयं किया॥

था भूमि-धारण से प्रथम ही
उच्च गिरि का शिर-शिखर।
अभिलषित शिव सम्बन्ध से
अब और होगा उच्चतर॥

पुर की स्त्रियों के मधुर मंगल-
गान सुनते श्री-सदन।
आचार-लाजा से ललित
पहुँचे हिमालय के भवन॥

हरि-कर सहारे हर शरद के
मेघ से भास्वान - सम
वृष से उतर विधि - क्रान्त
पहुँचे अचल के घर में सहम॥

इन्द्रादि सुर, सप्तर्षि, सब गण ने
किया पीछे गमन।
जैसे सफल आरम्भ का करते
प्रयोजन अनुगमन॥

उपविष्ट आसन पर रतन, जल
गव्य मधु-मिश्रित लिया।
गिरि-दत्त वस्त्र समन्त्र विधिवत्-
ग्रहण शंकर ने किया॥

अवरोध-जन गिरिजा-निकट
लाये त्रिदृग को इस तरह।
वेला-निकट शशि-किरण लातीं
सिन्धु को हैं जिस तरह॥

शरदागमन से लोक-सम लख
पार्वती - मुख - विधु विमल।
शिव के नयन - कैरव खिले
मन सलिल-सम अतिशय अमल॥

शिव-पार्वती के नयन मिल-मिल
कर हटें, हट-हट मिले।
उस समय दोनों ने किया
लज्जाऽनुभव, पर मन खिले॥

हर-त्रस्त गिरिजा में छिपे
स्मर-प्रथम अंकुर - सम सजल
गिरिजांगुली को राग से
शिव ने छुआ, अरुणाभ फल॥

पुलकित हुई गिरिजा तथा
वृषकेतु आर्द्राङ्गुलि हुए।
कर-मिलन से, व्यापार स्मर का
युगल पर सम ही हुए॥

जिनके स्मरण से अन्य दम्पति
व्याह में होते महा।
उन-हर उमा का व्याह - गौरव
किस तरह जाये कहा॥

शोभित कृशानु-प्रदक्षिणा से
वे हुए अति इस तरह।
गिरि मेरु-परिसर में निशा-दिन
घूमते हैं जिस तरह॥

भाँवर-क्रिया करवा उमा-हर
से पुरोहित ने अमल।
फिर पार्वती के हाथ लाजा-
होम करवाया विमल॥

शुचि मधुर - लाजा-धूमसूँघा
साञ्जली गुरु - आज्ञया।
वह धूम क्षणिक उमा श्रवण का
नील-उत्पल बन गया॥

धूमग्रहण से आर्द्र मुख,
धूमिल यवांकुर हो गया।
दोनों कपोल अरुण, नयन-
अंजन शिथिल-श्री हो गया॥

बोले उमा से गुरु शुभे,
उद्वाह-साक्षी यह अनल।
सोचे बिना, पति-साथ
धर्माचार तुम करना अमल॥

गुरु-वचन गिरिजा ने पिया
आदृत श्रवण से इस तरह।
ग्रीष्मातितप्ता भूमि पीती
प्रथम घन-जल जिस तरह॥

ध्रुव-दर्शनार्थ उमेश ने
सामोद गिरिजा से कहा।
'देखा'—क्षणिक बन उन्मुखी
ह्रीसन्नकण्ठी ने कहा॥

इस तरह गुरु ने शिव-उमा का
ब्याह करवाया विमल।
उस नवल दम्पति ने पितामह
को प्रणाम किया अमल॥

'तुम वीर सुत पैदा करो' विधि
ने उमा से तो कहा।
पर कह सके वागीश भी न
निरीह शिव से कुछ अहा॥

चतुरस्रवेदी पर गये
कनकासनस्थ हुए युगल।
पीताक्षतारोपण कलित
तन पर किया अनुभव सजल॥

मोती-सदृश पत्रान्त-रत-
जल-बिन्दु-मय नव दिव्यतम।
श्री ने कमल का छत्र रक्खा
वर-वधू-शिर पर स्वयम्॥

शुभ शारदा ने युगल वाङ्मय
से किया पावन स्तवन।
क्रमबद्ध प्राकृत और संस्कृत में
वधू-वर का नमन॥

प्रतिबद्ध राग रसान्तरों में
सन्धि में व्यंजित कलित
क्षण अप्सरा-गण-आद्य-
नाटक युगल ने देखा ललित॥

अवसान में विनताभिवादन
कर वधूवर का अमर
स्मर के लिये शिव से लगे
करने विनय कर जोड़कर॥

शिव ने किया स्वीकार स्मर-शार
तुरत अपने में तदा।
होती सफल प्रभु-प्रार्थना
कालञ्जन की सर्वदा॥

कर देवताओं को विदा कर से
उमा को थाम कर
आये कनक-घट-मय कुसुम-मय
शयन-गृह में चन्द्रधर॥

नव लज्जिता, सखिमुखरिता
शिव कर्ष से गूढ़ानना
प्रमथादि गण ने उस नवोढा
को हँसाया मुह बना॥

—:o:—